जनसत्ता

14 दिसंबर, 2019

संकट के सामने

केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय से देश की अर्थव्यवस्था के जो आंकड़े आ रहे हैं वे तो चिंतित करने वाले हैं ही, साथ ही खुदरा महंगाई के जो आंकड़े आए हैं, वे कहीं ज्यादा परेशान करने वाले हैं। चूंकि महंगाई का मामला सीधे आमजन से जुड़ा है, इसलिए यह गंभीर चिंता का विषय है। महंगाई बढ़ने का सीधा असर लोगों की जेब पर पड़ता है। ऐसे में अगर यह पता चले कि नवंबर में खुदरा महंगाई पिछले चालीस महीनों में सबसे ज्यादा रही, तो होश उड़ने तय हैं। इस साल नवंबर में खुदरा महंगाई की दर 5.54 फीसद रही, जबकि अक्तूबर में यह 4.62 फीसद थी और पिछले साल नवंबर में 2.33 फीसद थी। यानी महीने भर में करीब एक फीसद महंगाई बढ़ी और पिछले साल के मुकाबले दोगुनी से भी ज्यादा। छोटी-मोटी चीजों में महंगाई का भले पता न चले, लेकिन प्याज के दाम तो पिछले दो महीनों से लोगों के आंसू निकाल ही रहे हैं। खुदरा महंगाई बढ़ने का कारण खाद्य पदार्थों में तेजी बताया जा रहा है। शायद ही कोई ऐसी चीज हो जो महंगी न हुई हो। मोटे अनाज से लेकर सब्जियां, अंडे, मांस-मछली, दालें सबने लोगों की जेब से ज्यादा पैसे निकाले।

बढ़ती महंगाई बता रही है कि उत्पादन से लेकर ढुलाई तक की प्रक्रिया में लागत बढ़ रही है। इसलिए दाल-अनाज जैसी चीजों के दाम बढ़े हैं। पिछले साल जून में भी खुदरा मुद्रास्फीति पांच फीसद पर पहुंच गई थी। महंगाई चाहे थोक मूल्य सूचकांक आधारित हो या फिर खुदरा में, इसका सीधा असर तो बाजार और खरीदार पर पड़ता है। यों हमेशा मुद्रास्फीति बढ़ने का सबसे बड़ा कारण पेट्रोल और डीजल के दाम बढ़ना बताया जा रहा है और ऐसा होता भी है। लेकिन इस बार तो पेट्रोल और डीजल के दाम भी पिछले कुछ महीनों से एक स्तर पर ठहरे हुए हैं। ऐसे में खुदरा महंगाई बढ़ना हैरान करने वाला है। हालांकि महंगाई को काबू करने के लिए रिजर्व बैंक कदम उठाता है। रिजर्व बैंक का लक्ष्य रहता है कि महंगाई दर चार प्रतिशत से ऊपर न निकले। लेकिन जब मुद्रास्फीति इससे ऊपर निकलने लगती है तो केंद्रीय बैंक पर नीतिगत दरें बढ़ाने का दबाव बढ़ जाता है। इसका असर यह होता है कि बैंक कर्ज सस्ता होने के आसार कम हो जाते हैं और अभी अर्थव्यवस्था के रफ्तार देने के लिए कर्ज और सस्ता करने की दिशा में विचार चल रहा है। ऐसे में महंगाई कैसे रुके, यह बड़ा सवाल है।

सिर्फ महंगाई ही नहीं, औद्योगिक उत्पादन की स्थिति संतोषजनक नहीं है। बिजली, खनन और विनिर्माण क्षेत्र में लंबे समय से जो सुस्ती बनी हुई है, उसका असर अब साफ दिख रहा है। अक्तूबर में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में 3.8 फीसद की गिरावट बता रही है कि औद्योगिक उत्पादन बढ़ने की जो उम्मीदें बनी थीं, वे हवा हो गई हैं। हालांकि सरकार ने मंदी से निपटने के लिए पिछले तीन महीनों में कई उपायों का एलान किया, जिनमें कारपोरेट करों में कटौती और बैंकों को पैकेज देने जैसे कदम भी शमिल हैं, लेकिन इनका कोई असर नहीं दिखा। ऑटोमोबाइल और उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण करने वाले क्षेत्र में लंबी मंदी ने हालात बिगड़ने के संकेत पहले से दे दिए थे, लेकिन सरकार ने कई महीनों तक इनकी अनदेखी की और समय रहते ठोस कदम नहीं उठाए। उनका नतीजा आज सामने है। अब भले सरकार की नींद टूटी हो, लेकिन उद्योग क्षेत्र की हालत सरकारी आंकड़े बयां कर रहे हैं। बढ़ती महंगाई और घटता उत्पादन बता रहा है कि सरकार समय रहते नहीं चेती तो हालात बेकाबू होने में देर नहीं लगेगी।

पर्यावरण के लिए

करीब ढाई महीने पहले संयुक्त राष्ट्र में स्वीडन की एक सोलह साल की किशोरी ग्रेटा थनबर्ग ने जलवायु संकट पर अपनी तीखी राय जाहिर करते हुए पर्यावरण संरक्षण के मामले में महज औपचारिकता निभाने को लेकर दुनिया के तमाम देशों को कठघरे में खड़ा किया था। तब उनके सख्त तेवर की भी काफी चर्चा हुई थी। अब भारत में मणिपुर की आठ साल की नन्ही बच्ची लिसीप्रिया कंगुजम ने एक बार फिर दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचा है। ग्रेटा थनबर्ग की तरह ही इस नन्हीं कार्यकर्ता ने भी मैड्रिड में चल रहे 'कॉप- 25' सम्मेलन में वैश्विक नेताओं से धरती, इंसानी नस्ल और उसके जैसे बच्चों के भविष्य को बचाने के लिए बिना देर किए कार्रवाई करने का आग्रह किया। कंगुजम अब तक इक्कीस देशों में जलवायु परिवर्तन की समस्या पर अपनी बात रख चुकी हैं और उन्हें दक्षिणी गोलार्ध की 'ग्रेटा थनबर्ग' बताया जा रहा है। पर्यावरणविदों के बीच यह खास आकर्षण का विषय है कि इतनी कम उम्र में यह बच्ची पारिस्थितिकी संतुलन के मसले पर कितना सरोकार रखती है। लेकिन सच यह है कि अगर कोई संवेदनशील व्यक्ति अपने आसपास की आबोहवा पर नजर रखता है और उसमें हो रहे बदलावों को करीब से महसूस कर पाता है तो यह अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण बात है।

गौरतलब है कि संयुक्त राष्ट्र में ग्रेटा थनबर्ग के साथ-साथ बारह देशों के पंद्रह अन्य युवा कार्यकर्ताओं ने भी पर्यावरण को बचाने के लिए पर्याप्त कदम नहीं उठाए जाने के लिए पांच देशों के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई थी। तब यह सवाल उठा था कि पिछले चार-पांच दशक से बढ़ते तापमान के मसले पर होने वाले वैश्विक सम्मेलनों में दुनिया भर के विशेषज्ञ और प्रतिनिधि आखिर किस तरह की कार्य-योजना पेश करते हैं कि अब तक इस दिशा में कोई ठोस पहल नहीं हो सकी। क्या इसी रुख के साथ पर्यावरण और पारिस्थितिकी के सामने खड़ी हो रही चुनौतियों का सामना किया जा सकेगा? सवाल है कि पर्यावरणविदों की राय जब सामने आती है तब दुनिया भर में इस पर चिंता जताई जाती है, लेकिन जब उससे बचने के उपायों की बात आती है, तब खासतौर पर वे देश क्यों अपने कदम पीछे खींच लेते हैं, जिन्हें सबसे ज्यादा जिम्मेदार माना जाता है। जाहिर है, यह मुख्य रूप से व्यवस्था का सवाल और इच्छाशक्ति के अभाव का मामला है।

इसलिए कंगुजम की यह बात महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि उसके जैसे नन्हे कार्यकर्ता व्यवस्था में बदलाव चाहते हैं, ताकि जलवायु परिवर्तन का संकट दूर होने का रास्ता अपने आप तैयार हो जाए। लेकिन वैश्विक स्तर पर पारिस्थितिकी संतुलन और पर्यावरण संरक्षण के व्यापक सवालों पर केंद्रित अमूमन हर साल होने वाले सम्मेलनों के बावजूद हालत आखिर ऐसी क्यों है कि हर अगले वर्ष जलवायु के सामने खड़ी चुनौतियां गहरी होती जा रही हैं? दुनिया के जो देश कार्बन उत्सर्जन के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार हैं, उन्हें अपनी जिम्मेदारी क्यों नहीं समझ में आ रही है और इस मसले पर आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों का दबाव क्यों नहीं काम कर पा रहा है? क्यों ऐसी नौबत आई है कि अब नई पीढ़ी के कम उम्र के बच्चों की भी नजर इस समस्या पर जा रही है और वे न केवल खुद अपने स्तर पर काम कर रहे हैं, बल्कि दुनिया को आईना दिखा रहे हैं। दरअसल, पहले ग्रेटा थनबर्ग और अब लिसीप्रिया कंगुजम जैसी किशोर और युवा कार्यकर्ताओं ने अब तक के वैश्विक पहलकदमियों को कठघरे में खड़ा किया है कि क्या केवल अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चिंता जताने भर से पर्यावरण की गंभीर समस्याओं का समाधान निकाला जा सकेगा!

कल्पमेधा

कविता मन की वह इच्छा है, जो हृदय को आह्लादित कर देती है।

– खलील जिब्रान

वैश्विक अशांति और जल

अरुण तिवारी

दुनिया के ज्यादातर हिस्सों में अशांति पानी से उपजी है तो शांति का मार्ग भी पानी में ही तलाशना चाहिए। किंतु भारत के पानी संकट का समाधान, इजरायली के जल प्रबंधन का मॉडल नहीं हो सकता। भारत का जल प्रबंधन दूसरे के संसाधन की ओर ताकने की बजाय अपने पास जो है, उसी से जीवन चलाने वाला होकर ही शांतिप्रद हो सकता है। पानी के उपयोग के मामले में हमें अनुशासित होना पड़ेगा, जल अपव्यय की आदत छोड़नी होगी।

हम इक्कीसवीं सदी के इस दूसरे दशक के अंतिम वर्ष में प्रवेश करने वाले हैं। इस वक्त की दो सबसे बड़ी सामाजिक चुनौतियां हैं- हताशा और तनाव। इन चुनौतियों के फलस्वरूप प्रमुखता से उभरते दृश्य चार हैं: अशांति, आत्मघात, विस्थापन और युद्ध। ये दृश्य पूरी दुनिया में तेजी से फैल रहे हैं और काफी गंभीर व कष्टदायक हैं। संयुक्त राष्ट्र चिंतित है कि लोग आपस में लड़ क्यों रहे हैं। उसकी चिंता यह भी है कि लोग एक देश से उजड़ कर दूसरे देशों में क्यों जा रहे हैं। यूरोपीय शहरों के मेयर चिंतित हैं कि विस्थापित उनके यहां आकर क्यों बस रहे हैं। जहां एक ओर भूखे, बीमार, लाचार लाखों परिवार रोजगार और शांति की तलाश में अपनी जड़ों से उजड़ने को मजबूर हैं, वहीं दूसरी ओर जिन इलाकों में वे जाकर बस रहे हैं, वहां कानून-व्यवस्था की समस्याएं खड़ी हो रही हैं। सांस्कृतिक तालमेल न बनने से भी समस्याएं हैं। इन समस्याओं और चिंताओं में तीसरे विश्व युद्ध के बीज मौजूद हैं। ज्यादातर प्रचार यही है कि इस अंतरराष्ट्रीय उजाड़ का कारण आतंकवाद, सांप्रदायिक विभेद, सीमा-विवाद अथवा आर्थिक तनातनी है। किंतु सच यह नहीं है। सच यह है कि बढ़ती हवस, बढ़ता उपभोग, घटते प्राकृतिक संसाधन और दूसरे के संसाधन पर कब्जे की नीयत ने ये हालात पैदा किए हैं। इन संसाधनों में पानी सबसे प्रमुख है। यकीन न हो तो दुनिया के मानचित्र पर निगाह डालिए।

आज तुर्की-सीरिया-इराक विवाद ने शिया-सुन्नी और आतंकवादी त्रासदी का रूप भले ही ले लिया हो, किंतु वास्तविकता यही है कि विवाद की शुरुआत इफरेटिस नदी के पानी को लेकर ही हुई थी। इफरेटिस नदी, तुर्की से निकल कर सीरिया होते हुए इराक तक जाती है। तुर्की का दावा है कि इस नदी में आने वाले कुल पानी में साढ़े अट्ठासी प्रतिशत योगदान तो अकेले उसका ही है, फिर भी वह तो मात्र तियालीस प्रतिशत पानी ही मांग रहा है। दूसरा पक्ष देखिए। इफरेटिस के प्रवाह में सीरिया का योगदान 11.3 प्रतिशत और इराक का शून्य है, जबकि पानी की कमी वाले देश होने के कारण सीरिया, इफरेटिस के पानी में बाईस प्रतिशत और इराक तियालीस प्रतिशत हिस्सेदारी चाहता है। वस्तुस्थिति यह है कि तुर्की ने मूल नदी जल बंटवारा संधि (1987) का उल्लंघन करते हुए 15 अप्रैल, 2014 के बाद से इफरेटिस नदी के प्रवाह में कटौती करनी शुरु की और अपनी दादागीरी जारी रखते हुए 16 मई, 2014 को सीरिया और इराक के हिस्से का पानी छोड़ना पूरी तरह बंद कर दिया। परिणामस्वरूप, नदी किनारे की खेती योग्य भूमि रेगिस्तान में तब्दील होती गई। सीरिया दुनिया में सबसे पुरानी खेती का देश है। नदी जल विवाद ने ऐसे देश के एक बड़े भू-भाग में खेती कार्य को दुष्कर बना दिया। इससे करीब बीस लाख की आबादी उजड़ी। उजड़ने वाले बगदाद गए, लेबनान गए, फिर ग्रीस, तुर्की से होते हुए जर्मनी, ब्रिटेन, स्वीडन, नीदरलैंड, ऑस्ट्रिया, बेल्जियम और यूरोप के देशों तक पहुंचे। आज सीरिया में पानी का संकट इतना गहरा है कि सीरिया की करीब सत्तर प्रतिशत आबादी पीने के पानी की कमी से जूझ रही है। जब पीने को पानी ही पर्याप्त नहीं तो भूख का इंतजाम कहां से हो?

यदि हम इफरेटिस नदी में 17.3 अरब क्यूबिक मीटर जल की उपलब्धता आंकड़े देखें तो समझ में आता है कि संबंधित तीनों देशों में पानी की मांग ज्यादा है और इफरेटिस नदी में पानी कम है। इसलिए मांग-आपूर्ति के इस असंतुलन के कारण भी तीनों देशों के भीतर तनाव बढ़ना ही था। तुर्की और इराक के लोगों द्वारा सीरिया के विस्थापितों के घरों और जमीनों पर कब्जे की हवस ने पूरा माहौल ही तनाव और हिंसा से भर दिया। अब कोई तुर्की से पूछे कि सीरिया और इराक में विस्थापन की बुनियाद किसने रखी? तुर्की द्वारा इफरेटिस और टिगिरिस पर बांधों ने ही तो।

दूसरा उदाहरण फिलस्तीन है। फिलस्तीन के पश्चिमी तट के साझे स्रोतों के पिच्यासी प्रतिशत पानी का उपयोग इजरायली कर रहे हैं। वे इजरायली किबुत्जों के नियंत्रण में हैं। एक ओर फिलस्तीन में बाहर से आकर बसे इजरायलियों के पास बड़े-बड़े खेत हैं, बागान हैं, स्वीमिंग पूल हैं। इजरायलियों के पास सिंचाई हेतु पर्याप्त पानी है, दोहन के लिए मशीने हैं तो दूसरी ओर ग्रामीण फिलस्तीनियों को बहता पानी तक नसीब तक नहीं है। वे जो पानी पी रहे हैं, वह

जहरीला है। इसलिए ज्यादातर लोग किडनी में पथरी जैसी बीमारियों के शिकार हैं। फिलस्तीनियों के पास जमीने हैं, लेकिन वे इतनी सूखी हैं कि वे उनमें कम पानी की फसलें भी नहीं उगा सकते। यही वजह है कि एक आम फिलस्तीनी, एक दुखी खानाबदोश की जिंदगी जीने को मजबूर हैं। शायद ही कोई दिन ऐसा जाता हो कि जब किसी न किसी इजरायली और फिलस्तीनी के बीच पानी को लेकर मारपीट न होती हो।

सीरिया, तुर्की, इराक, फिलस्तीन, इजरायल के ये टकराव तो नजीर मात्र हैं। मध्य एशिया और अफ्रीका के करीब चालीस देशों में कायम सामुदायिक अस्थितरता का मूल कारण पानी ही है। जॉर्डन, केन्या, यूथोपिया, सोमालिया, सूडान, ब्राजील सब जगह एक जैसे हालात हैं। समय बीतने के साथ-साथ यह समस्या और गंभीर होती जा रही है। जैसे-जैसे दूसरे देशों में शरणार्थियों की संख्या बढ़ रही है, अशांति बढ़ रही है। सत्ता में बने रहने की राजनीतिक चालें, जस संकट से उपजे इस संकट को वर्ग और सांप्रदायिक विभेद और राष्ट्रवादी नारों के रंग भरकर पेश कर रही हैं। ये चालें दुनिया को हिंसा और युद्ध के जिस रणक्षेत्र की ओर ले जा रही हैं, क्या यह पानी की खातिर विश्व युद्ध का कुरुक्षेत्र नहीं है?

सवाल है कि क्या भारत इससे अछूता है? इस साल मार्च में दिल्ली की एक झुग्गी बस्ती में पानी के झगड़े में एक की हत्या कर दी गई थी। पानी की आपूर्ति में कमी और बिल में बढ़ोत्तरी के विरोध जयपुरवासी सड़क पर उतरे। शिमलावासियों के नलों में तीसरे दिन आते पानी का आक्रोश, स्वयं हिमाचल के महामहिम राज्यपाल के मन में दिखा। उत्तराखंड के बानवे में से इकहत्तर नगरों-कस्बों में मानक से बहुत कम और खराब पानी मिला।

पानी से जुड़ी कई समस्याएं भारत के लिए राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय विवाद का कारण बनती जा रही हैं। सतलुज नदी बंटवारे के कारण हरियाणा-पंजाब के बीच तलवारें खिंचती रहती हैं। कावेरी जल विवाद का आक्रोश हमने बीते मार्च-अप्रैल के दौरान संसद में भी देखा और सड़कों पर भी। मानसरोवर स्थित मूल स्रोत से निकलने वाली सिंधु नदी के लद्दाख क्षेत्र में कब्जे की चीनी साजिशों से हम वाकिफ हैं ही। भारत आने वाले तिब्बती प्रवाहों में चीन द्वारा परमाणु कचरा डालने और बांध बना कर पानी रोकने की करतूतें पुरानी हैं। जल बंटवारे को लेकर पाकिस्तान के साथ हमारे विवाद हैं। नेपाल मूल की नदियों में नेपाल द्वारा छोड़े गए पानी से भारत में होने वाली तबाही को लेकर हम चिंतित रहते ही हैं।

दुनिया के ज्यादातर हिस्सों में अशांति पानी से उपजी है तो शांति का मार्ग भी पानी में ही तलाशना चाहिए। किंतु भारत के पानी संकट का समाधान, इजरायली के जल प्रबंधन का मॉडल नहीं हो सकता। भारत का जल प्रबंधन दूसरे के संसाधन की ओर ताकने की बजाय अपने पास जो है, उसी से जीवन चलाने वाला होकर ही शांतिप्रद हो सकता है। पानी के उपयोग के मामले में हमें अनुशासित होना पड़ेगा, जल अपव्यय की आदत छोड़नी होगी। कम पानी और वर्षा आधारित खेती-बागवानी को अपनाना चाहिए। जितना पानी कुदरत से लें, उसे वैसा और उतना पानी संचित करके लौटाना चाहिए। जितना पानी बरसता है, उसे संचित करके हम ऐसा कर सकते हैं। हमारे जल संकट का समाधान भी हमारे प्रबंधन में ही है।

बैरागी शायर

आतिफ रब्बानी

दुनिया मेरे आगे

'तुम बनो रंग, तुम बनो खुशबू, हम तो अपने सुखन में ढलते हैं', जौन एलिया ने कहा। उन्होंने रंग-ओ-खुशबू को शायरी के पैकर में ढाला, जिया और बरता। छोटी-छोटी पंक्तियों में बड़ी बातें कहने वाले इस शायर का जन्म 14 दिसंबर, 1931 को अमरोहा में हुआ था। उनका पूरा नाम सैयद जौन असगर एलिया था। वे बेजोड़ शायर तो थे ही, गद्य पर भी उनको मलका हासिल था। अंग्रेजी, अरबी, फारसी, संस्कृत और हिब्रू भाषाओं पर जबर्दस्त पकड़ थी।

जोश मलीहाबादी और कमाल अमरोही के बारे में कहा जाता है कि उर्दू भाषा शब्द उनके सामने दस्तबस्ता खड़े हो जाते। जहां जिसकी जरूरत हुई, वहीं उस शब्द को रख दिया। लेकिन जौन एलिया भी हैं, जो लफ्जों को हुक्म देते और लफ्ज कतार बांध कर, संवेदना की उंगली थामे, दर्द समेटे खड़े हो जाते। जादुई शायरी की इबारतें कागज और दिलो-दिमाग पर दर्ज हो जातीं। हर कोई उनकी शायरी के जादू में बंध जाता।

जौन ने महरूमियों को गले लगाया, बीमारी से लुत्फअंदोज हुए। आत्मपीड़ा से लज्जत हासिल किया। जीवन की सच्चाई बयान करने वाले इस शायर ने खुद को सिगरेट की धुंध में भटकाया। अंत में अपने आप को सागर-ओ-मीना के हवाले कर दिया। जौन की शायरी में उदासी चीखती, दर्द कराहता और विरह रूदाली गाती है। उनकी शायरी की यह उदासी पाठक और श्रोता के दिल में उतर कर रोम-रोम में समा जाती है।

अक्सर देखने में आया है कि दुनिया को फतह करने वाला आदमी अपने घर से हारा हुआ होता है। जौन ने भले ही शायरी का हर किला फतह कर लिया हो, लेकिन घरेलू जिंदगी में उन्हें नाकामियां ही हाथ लगीं। एक प्रेमिका उम्र-भर उनका ख्वाब रही, लेकिन इस ख्वाब की ताबीर उनकी महरूमी रही। महिलाएं उनकी इज्जत करती थीं, उनसे मुहब्बत नहीं करती थीं। यही अलमिया मजाज का भी था। मजाज की जीवनी 'शोरिशे दौरां' में हमीदा सलीम ने लिखा है कि महिलाएं मजाज की इज्जत करती थीं, उनकी शायरी पर आहें भरतीं, लेकिन उनसे मुहब्बत नहीं करती थीं। फिर भी, मजाज हों या कि जौन, दोनों ने प्रेम की आस में जिंदगी गुजार दी। जौन ने कहा- 'उनकी उम्मीद नाज का/ हमसे ये मान था/ कि आप उम्र गुजार दीजिए/ उम्र गुजार दी गई।'

वस्ल, हिज्र-ए-फिराक यानी संयोग और विरह को उन्होंने कुछ इस अंदाज में पेश किया कि दुनिया उनकी दीवानी हो गई। उन्होंने दुनिया को गजल के एक नए लब-ओ-लहजे और शिल्प से परिचित कराया। जौन छपने-छपवाने के बजाय निजी नशिस्तों और मुशायरों में पढ़ना पसंद करते थे। उनके दोस्तों ने बार-बार आग्रह किया कि वे अपनी शायरी छपवाएं। लेकिन जब ऐसा न हो सका तो उनके दोस्तों ने उनका काव्य संग्रह संकलित करने का बीड़ा उठाया। गुजारिश की गई कि वे संकलन की भूमिका लिखें। वे राजी हो गए। जब दोस्त एक महीने के बाद गए तो वे तीन सौ पन्ने लिख चुके थे और लिखने का सिलसिला अभी जारी था। वह भूमिका अपने आप में एक किताब के बराबर थी। आखिरकार निर्णय लिया गया कि इन तीन सौ पन्नों का सार तैयार किया जाए। यही सार उनकी किताब 'शायद' में शामिल है। यह भूमिका भाषा, गद्य, कविता और दर्शन का बेजोड़ नमूना है। इसमें उन्होंने न सिर्फ कविता और जीवन दर्शन, बल्कि गणित, मनोविज्ञान, कॉस्मोलॉजी, समाजशास्त्र, धर्म के आपसी रिश्तों पर भी रोशनी डाली है। इस भूमिका में उन्होंने अपने निजी जीवन के ऐसे पहलुओं को भी उजागर किया है, जिसका हौसला उर्दू के बहुत कम साहित्यकारों और कवियों के पास है। ऐसा हौसला उनके अलावा साकी फारूकी ने अपने आत्मकथ्य 'आप बीती पाप बीती' में दिखाया है। जौन के अन्य काव्य संग्रह 'गुमान', 'गोया', 'लेकिन' और 'यानी' हैं। ये सारे संग्रह उनकी मृत्यु के बाद संकलित किए गए।

गालिब ने कहा है- 'न गुल-ए-नग्मा हूं न पर्दा-ए-साज/ मैं हूं अपनी शिकस्त की आवाज।' यही शिकस्त की आवाज जब जौन के दिल से निकली तो लाफानी शायरी हुई। उन्हें अपनी शिकस्त पर नाज था और नाकामी पर फख्र। जौन ने अपनी किताब 'शायद' के पहले पन्ने पर ही लिख दिया 'ये एक नाकाम आदमी की शायरी है। यह कहने में क्या शरमाना कि मैं रायगां गया।'

फ्रेंज काफ्का ने कहा है कि हमारे अंदर अज्ञान से जमे हिमखंड को तोड़ने के लिए पुस्तक एक कुठार है। जौन काफ्का पर ईमान लाए। उन्हें शुरू से ही किताबों का शौक था, इश्क भी, जिसकी वजह से वे जिंदगी और मुहब्बत दोनों में कामयाब न हो सके। वे कहते हैं- 'इन किताबों ने बड़ा जुल्म किया है मुझ पर/ उनमें इक रम्ज है/ जिस रम्ज का मारा हुआ जह्न/ मुज्दा-ए-इशरत अंजाम नहीं पा सकता/ जिंदगी में कभी आराम नहीं पा सकता।' उनका कहना था कि धर्म के ठेकेदारों के पास दौलत, ताकत और हुकूमत आ जाने पर चारों तरफ खौफ का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। खौफ, नफरत और सांप्रदायिकता की जो फसल पाकिस्तान काट चुका है। उसकी फसल अब भारत में भी तैयार खड़ी है। उनका यह शेर कितना प्रासंगिक है! 'नमाज-ए-खौफ के दिन हैं कि इन दिनों यारो/ कलंदरों पे फकीहों का खौफ तारी है।'

जौन का मतलब होता है वजा, आभा या भेस। एलिया फनकारों, कलाकारों और मनीषियों की रहस्यमयी बस्ती का नाम है। उनका भेस सबसे निराला था। अपने बड़े-बड़े बालों को झटक कर जानू यानी घुटने पर हाथ ठोंक कर बड़े ही प्रभावशाली अंदाज में कविता पाठ करते।

कब तक प्याज

राजधानी दिल्ली के खुदरा बाजार में प्याज सौ से एक सौ चालीस रुपए किलो बिक रहा है। वहीं मदुरई में तो यह एक सौ अस्सी रुपए बिका। इसका कोई तो गंभीर कारण होगा। भारत में चाहे आप शाकाहारी खाना देख लें या मांसाहारी, दोनों में प्याज का खूब इस्तेमाल होता है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक भारत में प्रति एक हजार व्यक्ति पर नौ सौ आठ लोग प्याज खाते हैं।

ऐसे में जब भी प्याज महंगा होता है तो यह सुर्खियों में आ जाता है। बारिश के अलावा कम बुआई खराब फसल और कम उत्पादन और जमाखोरी भी प्याज को महंगा करने के अन्य बुनियादी कारण हैं। सन 2018 के बजट के समय प्रधानमंत्री ने प्राथमिकता जताई थी कि प्याज, टमाटर और आलू के दाम स्थिर रहना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हो सका। प्याज के थोक व्यापारियों के मुताबिक कई जमाखोर प्याज सस्ता होने के बावजूद उसे महंगे दामों पर बेच रहे हैं और प्रशासन की ओर से जमाखोरों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जा रही है।

हालत यह है कि अब प्याज के इतना महंगा होने पर विरोध प्रदर्शन हो रहा है। कई जगहों पर प्याज की माला पहन कर प्रदर्शन किया जा रहे हैं तो कहीं प्याज को भगवान मान कर उनकी पूजा की जा रही है। सड़कों पर ही नहीं, बल्कि संसद के भीतर भी हंगामा मचा हुआ है। पिछले दिनों कांग्रेस सांसदों ने सरकार की तीखी आलोचना की। संसद के भीतर वह क्षण वाकई हास्यास्पद था जब वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने कहा कि वह ऐसे परिवार से आती हैं, जहां प्याज और लहसुन का मतलब ही नहीं है। फिलहाल प्याज के भाव में नरमी के कोई संकेत नहीं दिख रहे हैं। कीमतों में दिनोंदिन इजाफा ही देखने को मिल रहा है।

महाराष्ट्र के सोलापुर बाजार में प्याज की कीमत दो सौ रुपए प्रतिकिलो के पार निकल गई है। इसकी वजह प्याज की कम उपलब्धता है। व्यापारियों का यह तक कहना है कि इस महीने के अंत तक प्याज की कीमतें ऊंची बने रहने के आसार हैं। आखिर ऐसा क्या हुआ कि हम महंगे दामों पर आयात के लिए मजबूर हुए हैं। ध्यान रहे कि 2022 तक किसानों की आमदनी दोगुनी करने के मोदी सरकार के वायदे और लक्ष्य में बागवानी फसलों की ही महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बेशक बजट में कई योजनाओं की घोषणा की गई थी, लेकिन हकीकत बिल्कुल अलग है। हमें यह भी भूलना नहीं चाहिए कि प्याज की कीमतों ने कई सरकारी दावे ध्वस्त कर डाले हैं। लिहाजा यह सवाल स्वाभाविक है कि इस बार प्याज के आंसू किसे रोने पड़ेंगे।

● *अमन सिंह, बरेली, उत्तर प्रदेश*

यथार्थ और पर्दा

फिल्में चाहे धार्मिक, राजनीतिक या ऐतिहासिक हों, सभी में थोड़ा मसाला और हास्य भरा जाता है, ताकि दर्शक ऊबे नहीं। इधर इतिहास से जुड़ी फिल्मों को लेकर हमारा देश काफी संवेदनशील हो गया है। एक हजार साल पहले क्या हुआ था, उसे लेकर हम आज मरने-मारने को तैयार रहते हैं। 2008 में 'जोधा अकबर' से लेकर पिछले साल 'पद्मावत' को लेकर काफी हल्लागुल्ला हुआ। अब आशुतोष गोवारिकर की फिल्म 'पानीपत' को लेकर राजस्थान से लेकर अफगानिस्तान तक विरोध किया जा रहा है। सभी अपने जाति और धर्म से जुड़े किरदारों को गलत ढंग से पेश करने का आरोप लगा रहे हैं। सिनेमा को मनोरंजक बनाने के लिए यथार्थ में थोड़ा-बहुत फेरबदल करने की छूट फिल्मकारों को मिल सकती है। लेकिन कई दफा ऐसे विरोध के कारण फ्लॉप होने वाली फिल्म भी हिट हो जाती है। फिल्मकारों को काम करने के लिए स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। लेकिन अगर इतिहास के मामले में ज्यादा तोड़-मरोड़ की जाएगी तो कुछ सवाल उठ सकते हैं।

● *जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

पेड़ की छांव

कान्हा नेशनल पार्क के जंगल से लगे गांवों की महिलाओं ने वन विभाग की मदद से नया जंगल लगाया। अवैध कटाई रोकने, वनों की रक्षा के लिए महिलाओं ने लाठी थामी है। वनदेवी सुरक्षा समिति का पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण की जागरूकता की पहल का संदेश पर्यावरण के प्रति पुनीत कार्य सराहनीय है। वनों की सुरक्षा और बंजर भूमि पर हरियाली विकसित करने के लिए सहयोग स्वरूप वन देवी सुरक्षा समिति जैसी समिति हर गांवों में हो, तो विभाग और समिति के माध्यम से वनों की बेहतर सुरक्षा संरक्षण का लाभ क्षेत्र को मिलता रहेगा।

देखा जाए तो वर्तमान में पेड़ से प्राप्त होने वाली सभी चीजे महंगी हैं। प्राचीन वृक्षों को, जो बीमार, अंदर से पोले या गिरने की कगार पर हो, उसका उपचार भी किया जाना चाहिए। पर्यावरण के हिसाब से यह गंभीर चिंता की बात है कि अधिक जंगल काटने से ज्यादा कार्बन उत्सर्जन होगा। यह सर्वविदित है कि वृक्षों से ताप का नियंत्रण होता है और वायुमंडल की विषाक्तता भी कम होती है। जितने अधिक वृक्ष होंगे, वातावरण उतना ही शुद्ध और स्वच्छ होगा। गरमी में इंसान, पशु, पक्षी और वाहनों को छांव की तलाश रहती है, वृक्षों के होने से जीवन सुखद होता है। भविष्य मे हरित क्रांति को विलुप्त होने से बचाने के लिए वृक्षारोपण के पुनीत कार्य और पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण में भागीदारी निभाए।

● *संजय वर्मा 'दृष्टि', मनावर, धार*

अपारदर्शी व्यवस्था

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय, आरबीआई और चुनाव आयोग ने आपत्ति जताई है कि चुनावी बॉन्ड में गोपनीयता रखना राष्ट्रहित में नहीं है। यानी इस अपारदर्शी व्यवस्था के दूरगामी परिणाम घातक होंगे। एक रिपोर्ट के मुताबिक कॉरपोरेट कंपनियां केंद्र में सत्ताधारी पार्टी को पनचानबे फीसद धन को चंदे के रूप में देती हैं। इसकी जानकारी सरकार को भले ही हो, लेकिन आम जनता को नहीं है। आखिर हर क्षेत्र में पारदर्शिता का नाम जपने वाली सरकार की चुनावी बॉन्ड में गोपनीयता रखने की मंशा क्या है? चुनाव के बाद कंपनियों के कोई खास फायदे के लिए तो कहीं यह राजनीति-कॉरपोरेट गठजोड़ नहीं है? वाकई चुनावी बॉन्ड जैसी सुविधा लोकतांत्रिक मूल्यों को कमजोर करेगी और सरकारें भी 'राष्ट्रहित' के बजाय 'कंपनी हित' को तवज्जो देगी। चुनाव आयोग को सशक्त बना कर और राजनीतिक दलों को आरटीआइ कानून के दायरे में लाया जाए, ताकि इस गठजोड़ को नाकाम किया जा सके।

● *कपिल एम वडियार, पाली, राजस्थान*

www.readwhere.com